पृ. १८० से २६५

## षष्ठ अध्याय

## "दिव्या" उपन्यास का उद्देश्य

उद्देश्य का स्वरूप

दिव्या का जीवन - विश्लेषण

जीवन, इहलोक और आत्मनिर्भरता

धर्म का आधार जीवन

मनुष्य जन्म और कर्म

नारी की समस्याएँ

दासी प्रथा की समस्या

धार्मिक रूढी, परंपरा और वेश्या समस्या

आन्तर्जातिय विवाह की समस्या

यौन समस्या - विवाहकी अनिवार्यता

वर्ण व्यवस्था की समस्या

यौन पवित्रता की समस्या

निष्कर्ष

संदर्भ सूची

## षष्ठ: अध्याय

### स्वरूप

आधुनिक उपन्यासोंमें उद्देश्य-तत्व के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है। आज का उपन्यासकार ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अथवा पूर्णत: काल्पनिक किसी भी प्रकारकी रचना किसी न किसी उद्देश्य से करता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे प्राय: सभी उपन्यासोंकी रचनाके पीछे कोई न कोई विशिष्ट उद्देश्य या जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण मिलता है। उपन्यासमें उद्देश्य पूर्ति के लिए भी लेखक प्राय : दो विधियों का आश्रय लेता है। इनमें से प्रथम विधिको प्रत्यक्ष और दूसरी को अप्रत्यक्ष कहा जा सकता है।

यशपालजीने "दिव्या" उपन्यास की रचना सोद्देश्य की है। उनके उद्देश्य को निम्नप्रकारसे देखा जा सकता है।

"दिव्या" की सफलता की दृष्टिसे विवेचन करनेमें स्वयं लेखक के विचार महत्वपूर्ण है - " इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्यका ..... अपनी परम्परा में आत्मविश्लेषण है। ..... मनुष्य से बडा है ..... केवल उसका अपना विश्वास और स्वयंउसका रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख विवंशता अनुभव करता है और स्वयं ही वह उसे बदल भी देता है । इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमिपर इसकल्पनामें देखने का प्रयत्न " दिव्या " है।"[1]

यशपाल इतिहास को पूजा या अन्धविश्वास की वस्तु न मानकर विश्लेषण की वस्तु मानते हैं। यशपाल अतीत का चित्र खींचकर उसमें से वर्तमान और भविष्य का पथ निर्माण करना चाहता है। जहाँतक अतीत को उस रूप में चित्रित करनेका प्रश्न है।- " दिव्या के साथ हिन्दी के कम उपन्यासोंका नाम लिया जा सकता है। इसके अन्दर उपन्यासकारने बौधकालीन भारतकी सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितीयोंका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। "2

## "दिव्या" का जीवन विश्लेषण

"दिव्या" उपन्यासमें जीवनसम्बन्धी जो विचार है, वह तीन शाश्वत प्रश्नोंको निर्माण कर, उन प्रश्नोंका उत्तर प्रस्तुत करनेका प्रयास करता है। ये तीन प्रश्न इस प्रकार है -

१] जीवन क्या है ?

२] व्यक्ति और समाजका पारस्परिक सम्बन्ध कैसा हो ? [ धर्म का वास्तविक अर्थ क्या है ? ]

३] नारी और पुरुष एक दूसरे के लिए क्या है ?

उपर्युक्त प्रश्नों की अभिव्यक्ति कथावस्तु, रूपमें उपन्यासमें मिली है। इन प्रश्नोंका विवेचन, विश्लेषण करनेमें उपन्यासका प्रतिनिधी पात्र " मारिश " विशेष भाग लेता है। इन प्रश्नोंके आधारपर मानव जीवन का किस पद्धति तथा किस दृष्टिसे विश्लेषण किया, यह महत्वपूर्ण है।3 इन प्रश्नों की खोजबीन

प्रस्तुत उपन्यास में की है, ऐसा कहेंगे तो गलत न होगा।

## जीवन , इहलोक और आत्मनिर्भरता

जीवन ही मनुष्य की प्रेरणा, चेतना-शक्ति है । जब तक मनुष्य के शरीरमें प्राण है तब तक वह जीवित रह सकता है। मानव जीवन गतिशील है। जीवन जन्म से प्रारम्भ होकर विकास, चरम विकास और मृत्यू की ओर चला जाता है। मनुष्य के जीवनमें नित्य परिवर्तन होता है, नित्य परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है। " परिवर्तन सेही मानव जीवन की सजीवता का रहस्य स्पष्ट होता है । मृत्यू जीवन के गतिका परिणाम है, परंतु इससे जीवन का पुरानापन दूर होता है। मृत्यूमेंही जीवन की परिणति स्पष्ट होती है । -हृदय से मृत्यू का भय निकालकर निडर होना, तथा निर्भिकता ही जीवन है ।"[4]

जीवन में मनुष्य का कर्तव्य जीना है, परलोक के मोहसे जीवन से पलायन करना नही। पलायन ही मनुष्य की भीरुता का लक्षण है। दुख की आशंकासे वास्तविकता की अवहेलना कर कल्पनामय सुख के पीछे लगना, यह जीवन को त्यागना है। दिव्या के सुंदर नृत्य के पश्चात् भिक्षु के वैराग्योपदेश के उत्तर में,- मॉरिश के विचार उल्लेखनिय है - " भन्ते, दु:ख की भ्रांति में भी जीवन का शाश्वत क्रम इसी प्रकार चलता है। वैराग्य में सन्तोष, भीरू की आत्मप्रवंचना मात्र है। जीवन की प्रवृत्ति प्रबल और असंदिग्ध सत्य है। "[5]

मनुष्य को अपना जीवन सुखद बनाने के लिए स्वतंत्र और निर्भीक बनना चाहिए। स्वयं को पराधिन समझना पशु के समान है। मारिश युध से भयातुर युवक को समझाता है - " मूर्ख। तूने और तेरे स्वामी ने परलोक देखा है ? यह विश्वास ही तेरी दासता का बन्धन है। तू संकट से पलायन कर रक्षा चाहता है, यह तेरी निर्बलता है। संकट सब स्थान और सब समय में तेरे साथ रहेगा। संकट का पराभव कर। पराभूत होना ही पाप है। उसका फल तू तत्काळ भोगेगा। तू स्वतंत्र "कर्ता" है। स्वतंत्रता अनुभव करना ही जीवन है। पराभूत सजीव होकर भी मृत है। निर्भय हो! जीवन के लिए युध कर! मृत्यू भय का अन्त है। जीवन में उत्तेजित हो। कायर मत बन! ..... दूसरों के स्वार्थ साधन के लिए तुम मनुष्य नही बने हो। उस डार्द के लिए पशु है। अपने लिए लडो। ..... मरना तो है ही, अपने मनुष्यत्व और अधिकार के लिए मरो! जो बिना विरोध किये दूसरोंके उपयोग में आता है वह जड और निर्जीव है, पशु से भी हीन। तुम सामन्तों के राज्य में आधे मनुष्य हो, पूर्ण मनुष्य बननेका यत्न करो। निराशा में शौंशिल्य से पशुत्व मत स्वीकार करो। "[6] मॉरिश के मुख से मानो दिव्या " का लेखक बोलता है।

मानव जीवन की स्वाभाविकता के अनुसार मनुष्य जीवन में युध करता हुआ, मृत्यू से न डरते हुए उसका स्वागत करता है। अमरता की कामना में भ्रम में पडकर मृत्यू के नियम न स्वीकारना, जीवन को अस्वीकार करने के समान है। मारिश कहता है - " गति का अर्थ है, एक समय और स्थान से दूसरे

समय और स्थान में प्रवेश करना, अर्थात परिवर्तन। यह परिवर्तन ही गति है। गति ही जीवन है। अमरता का अर्थ है - अपरिवर्तन, गतिहीनता . . . . . यदि सूर्य जैसे और जहाँ है, वही स्थिर हो जाए " यदि जलवायु जैसे और जहाँ है स्थिर हो जाए, सब स्थिर और अपरिवर्तनशील हो जाएँ, सम्पूर्ण प्रकृति जड़ हो जाए ? तो क्या जीवन काम्य और सुखमय होगा ? "[7] इससे यह संदेह पैदा होता है या निर्माण होता है, कि मनुष्य को यदि मरना ही है तो भविष्य की चिन्ता क्यों करे, प्रयत्न क्यों करे ? इस शंका का समाधान खोजने के लिए, जीवन की धारा को समझने के लिए व्यक्तिको समाज का अंग बनना चाहिए। वह सन्तति के रूपमें भविष्य में जीता है। यह बात समझ लेनेसे ही तथ्य स्पष्ट होगा कि - " जीव और समाज की यह परम्परा हमारे जन्म के अस्तित्व से पूर्व थी और उसके पश्चात् भी रहेगी। तो फिर मरना - जीना व्यक्ति का है। जीव और समाज की परम्परा मनुष्य की कल्पना की सीमा तक अमर है। व्यक्ति के जीवन का कारण और परिणाम इसी परम्परा में है। "[8]

मनुष्य को अपने जीवन में कइ अनुभवोंसे हताश होना उचित नही है। मारिशा अंशुमाला[ दिव्या ] को सात्वना के रूपमें जीवन का मर्म समझाता है - " भद्रे, जीवन का कोई अनुभव स्थायी और चिरन्तन नहीं। जीवन की स्थिति समयमें है और समय प्रवाह है। प्रवाह में साधु-असाधु, प्रिय-अप्रिय सभी कुछ आता है। प्रवाह का यह क्रम ही सृष्टि और प्रकृति की नित्यता है। जीवन के प्रवाह मे एक समय असाधु-अप्रिय अनुभव आया, इसलिए उस प्रवाह से विरक्त होकर जीवन की तृषा तृप्त न करना केवळ दृढ है। "[9]

उपन्यास के अन्त में मारिश दिव्या को आव्हान करता है, वह जीवन विश्लेषण, विवेचन के रूपमें है। वह कहता है - " मारिश देवो को निर्वाण के चिरन्तन सुख का आश्वासन नही दे सकता वह संसार के सुख: दुख के अनुभव करता है। अनुभूति और विचार ही उसकी शक्ति है। उस अनुभूति का आदान प्रदान ही वह देवी से कर सकता है। वह संसार के धूलि धूसरित मार्ग का पथिक है। उस मार्गपर देवी के नारीत्व को कामना में वह अपना पुरूषत्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान-प्रदान चाहता है। वह नाश्वर जीवनमें संतोष की अनुभूति दे सकता है। ........ सन्तति की परम्परा के रूपमें मानवता को अमरता दे सकता है। "[10]

इस प्रकार "दिव्या" उपन्यास में जीवन, इहलोक और आत्मनिर्भरता का सोद्देश्य विवेचन मिलता है। जो तर्क संगत भी है।

## धर्म का आधार - जीवन : विविध विचार

मनुष्य अपना जीवन सुखी बनाने के लिए " जियो और जीने दो " का सिधांत पालन करता है। इससे व्यक्ति समाजका एक अंग बन जाता है। धर्म के माध्यमसे व्यवस्था की जाती है। जीवन व्यतीत करने के लिए देश- काल- वातावरण के अनुसार व्यक्ति और समाज की स्थिर कर्तव्योंको धर्म कहा जाता है। अत: धर्म देवी शक्तिव्दारा न लादा, तो एक जीवन के अनुकूल मार्ग तथा निर्देशन है। जो लोग स्वार्थ, अहंकार भ्रमवश

"धर्म" को रूढ़ी मानकर आतंक फैलाते हैं, उससे मानव का अहित होता है। धर्मस्थ अपने दीर्घ अनुभवसे धर्म के सहज रूपको स्वीकार करते . है -

" धर्मस्थान कोई स्वयंभू और स्वतंत्र सत्ता नही। वह केवल समाज की भावना और व्यवस्था की जिव्हा है। इतने समयपर्यंत न्याय की व्यवस्था देकर मैं यही समझ पाया हूँ, न्याय व्यवस्थापक के आधिन है। "[11]

"दिव्या" के जीवन की घटना तथा पीडा धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डालती है। दासी दिव्या के मनमें प्रश्न निर्माण होता है कि बौध धर्म के अनुसार, " मनुष्य का सारा दुःख उसके कर्मोंका फल है, तो उसके पुत्रने अभी से कौनसा दुष्कर्म किया है कि उसे यह कष्ट भोगना पडा, और स्वयं उसने भी कौनसा अनुचित कार्य किया है, जिसका वह दण्ड उसे मिला। उसने जो कुछ किया था, वह सृष्टिके चिर धर्म के अनुकूल था।"[12] वह सोचती है कि यह अत्याचार नियामक द्विज वर्गोंका है। व्दिज वर्ग ने धर्म के नियम बनाये हैं। उस पुरातनवादी विचारों में समाज रूढीयों केचक्कर में फँस गया है।

व्दिज वर्गके नियमोंके बाहर जानेवाले व्यक्तिकी दशा दिव्या की तरह होती है। सामान्य जनता का इहलोक का सुख और आत्मविश्वास व्दिज वर्ग ने पुनर्जन्म की कल्पना करते हुए छिन लिया है। अपनी इच्छा के अनुसार सामान्य जनता से व्यवहार करते है। इसलिए रूद्रधीर पृथुसेन से कहता है - " दास पुत्र को अभिजात वर्ग के युवकोंके साथ शिविका में कंधा देने का अधिकार नही। "[13]

द्विज वर्गने ही मानव के बीच ऊँच-नीचता का भेद-निर्माण किया है। द्विजवर्गने इहलोक की सत्ता-व्यवस्था हाथमें रखने के लिए परलोक की कल्पना की है। परलोक के प्रलोभन से रत्नप्रभा वास्तविक जीवनकी अवहेलना करती है, उसपर मारिश प्रहार करता है। - " परलोक मे अधिक भोग का अवसर पाने की कामना से किया गया यह त्याग, त्याग नही। तुम्हारी आशा और विश्वास के अनुसार यह त्याग भोग की आशा का मूल्य है। भोग की इच्छा है तो साधन करके भोग करो। आत्मप्रवंचना कर वंचित होने से क्या लाभ ? परलोक केवल अनुमान और कल्पना है, प्रत्यक्ष नहीं। जो तुम्हे परलोक का विश्वास दिलाता है, उसने परलोक को दूसरे के शब्द मात्रसे जाना है और उसने किसी और के शब्द से। "[14]

चार्वाक मारिश के अनुसार सभी प्रत्यक्ष जगत् का अनुभव करते है। लेकिन प्रत्यक्ष जगत् को मिथ्या मानकर अप्रत्यक्ष ब्रम्ह तथा जीवात्मा विषयक कल्पना स्वीकार करते। लेकिन मारिश का मत यह है कि - " अन्धविश्वास " की अपेक्षा अनुभूति और तर्क का आश्रय उचित है। उसका दृढ मत यह है कि - "यह जीवन ही सत्य है। यह संसार ही सत्य है। जो पाना है, इसी जीवनमें पाओ। "[15]

## मनुष्य जन्म और कर्म

"दिव्या" उपन्यासके आरंभ मेंही प्रश्न उठता है की मनुष्य का महत्त्व उसके जन्म से है या उसने किये कर्म से ?

"मधुपर्व के अवसरपर सर्वश्रेष्ट नृत्य करनेके उपलक्ष्य में दिव्या को "सरस्वती-पुत्री" की उपाधि से विभुषित किया जाता है और इसी मधुपर्व के अवसर आयोजित शस्त्रप्रतियोगितामें दास-पुत्र पृथुसेन को सर्वश्रेष्ट खड्गधारी घोषित किया गया। "[16] इससे यह स्पष्ट होता है, मनुष्य छोटा या बडा, कर्म सेही बनता है।

जन्म से व्यक्ति को बडा या छोटा समझना भ्रम है। क्यों कि जिस समय सागल पर विदेशी आक्रमण होता है उसी समय गण में, उच्च कुलमें जन्म लेनेवाले, स्वयं को श्रेष्ठ माननेवाले व्यक्ति पौरूषहिन हो गये है। युध्द समाज के लिए अनजाना है। युध्द के समय बडे मौज कर रहे है और उसने पीते जा रहे है। श्रमिक वर्ग हताश बनकर पलायन करनेको सोच रहा है। वृध्द खड्गकार का प्रलाप इस स्थितिपर चुनौति भरी टीका है - " क्या उपयोग है इस [परिश्रम संचित] धन का ? जो खा लिया, जो पी लिया वही मेरा है। मैं दिनभर उग्रताप में बैठकर तलवारे गढता हूँ। वही तलवार हाथ में लेकर राजपुरूष मेरे पुत्रको बलात् सैन्य दलमें हाँक ले गये। मेरा पुत्र केंद्रस के खड्ग का प्रहार सहने दार्व जाएगा और याजक पुरोहित मेरे दिए राजबलिके द्रव्यसे मन्त्र से पवित्र सुरापान कर, बलि के मांस का भोजन कर, मन्त्र पाठ द्वारा रक्षक देवता का आव्हान करेगा। महायोध्दा सामंत गौर-कृष्ण वर्ण दासियोंको अंक में ले शय्यारूढ होने का पराक्रम करेंगा और खड्ग के आघातसे काँपता हुआ मेरा पुत्र कायर होगा। हाय इससे तो वह श्रमण बनकर ही दीर्घजीवी होता तो अच्छा होता....।"[17]

## नारी की समस्याएँ

### दासी पृथा की समस्या :

दास पृथा समाज के लिए कलंक के रूपमें प्राचीन, मध्यकालीन, भारत में व्याप्त थी। दासों की स्थिति बडी शोचनिय है। इसमें मनुष्य- मनुष्य का शोषण करता था। कुछ मुद्राओं मे खरीद लेनेसे दासोंका जीवन अपने स्वामी तथा सामंतो के लिए था। वे पशु से भी हीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। यशपालने अपने ऐतिहासिक उपन्यास " दिव्या " मे दास पृथा की क्रूरता की ओर संकेत किया है ।

"दिव्या" मे दास जीवन तथा नारी के अभिशप्त जीवन का चित्र विषद किया है। " दिव्या " उपन्यासमें "दारा" बनी दिव्या का चित्रण महत्वपूर्ण है। जब पुरोहित की पत्नी अपने पुत्र का पेट भरनेको विवश है। जो शाकुल के भूखे रहने की कल्पनासे कभी दिव्या के स्तनोंसे दूध न उतरता तो पुरोहित की पत्नी शाकुल को लाकर उसके सामने खडा कर देती। " अपने पुत्र के प्रति ममता की अनुभूति से दारा के स्तनोंसे दूध और नेत्रोंसे जल बह चलता उससे स्वामी की संतान तृप्त होती। "18

अपने पुत्र को भूखा छोडकर, दूसरे बच्चे को दूध दिलाना यह दिव्या के लिए मानसिक वेदना है।

दिव्या को पुरोहित के घरपर जो मानसिक यंत्रनाएँ सहनी पडती है उसे पढकर मानव -हृदय तो क्या पत्थर भी पिघल

जाता है। इसका एक चित्र दृष्टव्य है - दारा का पुत्र फटे वस्त्रोंमें अलिंद में पड़ा रहता। इस समय दारा की स्थिति स्वामी की गाय की तरह थी। यशपाल दिव्या की तुलना गाय से करते हैं, उसमे पुत्र के प्रति वात्सल्य और दुःखोंसे त्रस्त नारी भी है। -

" केवल उसके गलेमें रस्सी नथी। रस्सी न होनेपर भी वह गाय की ही भाँति विवश थी उसके गलेमें विवशता और मान्यता की रस्सी थी। शायद उस रस्सी को तोड़ना ही लेखकका उद्देश्य रहा है। दिव्या अनुभव करती थी कि गाय का -हृदय भी अन्याय की भावना और प्रतिहिंसा अनुभव करता है या नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ? वह स्वयं ऐसा अनुभव क्यों करती है ? वह क्यों अपने शरीरपर स्वयं अपना अधिकार अनुभव करती है। दासी होकर अपने पर अधिकार करना पाप था। वह विवशतासे सोचती थी कि, - उसकी सन्तान को जीवन के लिए पोषण का अधिकार क्यों नहीं है। "[19]

प्राचीन कालमें दासों को पशुओंकी भाँति खरीदा तथा बेचा जाता था और मन के अनुकूल उपयोग किया जाता था। इसका अत्यंत सजीव चित्रण यशपालने दिव्या" में किया है। दिव्या एक ब्राम्हण कुमारी के विक्रय के समय खरीदने और बेचनेवालों के बीच के वार्तालाप से दासोंके जीवन का सही अंदाज लगाया जा सकता है - " क्या कहते हो मित्र ? . . . . . गर्भिणी होनेके कारण मलिन है तो क्या ? . . . . . किस राजकुमारी से कम है ? मैं जानता हूँ, चार मास पश्चात् तुम उसके पाँच सौ स्वर्ण मुद्रा पाओगे। "[20] दिव्या एक के पश्चात् दूसरे और तीसरे को बेचना

दास जीवन की करूण कथा है ।

इसके सिवा अन्य करूणा तथा कलंक स्वरूप प्रसंग यशपालजीने " दिव्या " में दिया है - " पुतलका अपनी दासियों से उत्पन्न सन्तान को बेचना। " उसके घर पर चार दासियाँ थी वे प्रति अठारह मास पश्चात सन्तान उत्पन्न किया करती थी। पुतुल दासियों को नही बल्कि उनकी संतान को बेचा करता था। "[21] संतान का वियोग सहन करना एक जीवन क्रमसा बन गया था। " मनुष्य द्दारा मनुष्य तथा मासूम बच्चों का क्रम विक्रय। यह उस समाज का निरीह चित्र स्पष्ट किया है।

छाया और दास नायक बाहुल एक दूसरेसे प्रेम करते है, मिलनही सकते। भोग के लिए पशु स्वतंत्र होता है। परंतु छाया और बाहुल हँस बोल भी नही सकते। ऐसी दासों की शोचनिय दशा को व्यक्त करनेमें -हृदयकी सारी संवेदना लगाई है। यहाँ छाया और बाहुल की अवस्था पशुसे बदतर दिखलाई गयी है।

धार्मिक रूढी, परंपरा और वेश्या समस्या :

"दिव्या" मे यशपाल ने धर्मद्दारा शोषण का चित्र अंकित किया है। धर्म की मान्यता में विश्वास नहीं करते। "दिव्या" मे अपने विचार स्पष्ट करते हैं - " निराश्रित दिव्या पिता का आश्रय छोडकर पति से विरकत दास के नारकीय जीवनसे मुक्ति तथा शांति पाने के उद्देश्य से बौध स्थविर से शरण की प्रार्थना करती है, परंतु " धर्म के नियमानुसार स्त्री के अभिभावक की अनुमति बिना संघ स्त्री को शरण नही दे सकता। "[22]

इसपर दिव्या प्रश्न करती है - " भगवान तथागत् ने तो वेश्या अंबपाली को भी संघ मे शरण दी थी। स्थविर ने आसन से उठते हुए उत्तर दिया - वेश्या स्वतंत्र नारी है, देवी। "[23]

आश्रय न पाकर वह सोचती है - " वह स्वतंत्र थी ही कब ? ....... अपनी सन्तान को पा सकने की, स्वतंत्रता के लिए दासत्व स्वीकार किया था। अपना शरीर बेचकर उसने इच्छा को स्वतंत्र रखना चाहा परंतु स्वतंत्रता मिली कहाँ ? कुल नारी के लिए स्वतंत्रता कहाँ ? ...... केवल वेश्या स्वतंत्र है। "[24]दिव्या यह निश्चय करती है कि - "वेश्या स्वतंत्र नही है। . . . . . . . अपनी सन्तान के लिए वह स्वतंत्र होगी। "[25] यहाँ यह स्पष्ट होता है की धर्म मे अबला नारी को शरण, शांति मिलनी चाहिए, परंतु वेश्या बनने के लिए प्रेरित किया जाता है।

"वेश्या स्वतंत्र नारी है, उसे शरण मिल सकती है, तुम्हे नही मिल सकती। इस स्थविर के उत्तरपर धार्मिक मान्यताओंपर व्यंग्य करते है। इसपर प्रसिध्द विद्वान भदंत आनंद कौसल्यायन के विचार दृष्टव्य है - " मैंने जब मे पंक्तियाँ पढी तो मेरे बौध -हृदयपर ऐसी चोट लगी कि मै तिलमिला उठा उस दिन से मैं सोच रहा हूँ कि इन पंक्तियों में, यशपालने हमारी समाज व्यवस्थामे नारी की दयनिय स्थितिपर जो प्रश्नचिन्ह लगा दिया है, उसका हमारे पास क्या जवाब है ? यशपालकी लेखनी नोक चुभलोंमें बेजोड है। अफीमची समाज की निद्रा भंग करनेका दूसरा उपाय भी तो नही। "[26] यह उनका प्रस्तुत मत धर्म की

वास्तविक विचारधारा पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है।

यशपाल समाज में व्याप्त धर्म की मान्यताओंपर आघात करते है, दिव्या का वेश्या बनना समाजपरअन्याय है। दिव्या जब नागरीकोंसे वेश्या का मार्ग पुछती है। तो उसकी उपहास और भर्त्सना की जाती है, एक नागरीक कहता है की, " माता का सम्मानित पद पाकर तू वेश्या बन समाज की शत्रु बनना चाहती है ? धन के लोभ में अपना शरीर और अपनी मातृत्व की शक्ति बेचना चाहती है ? ...... हतभागी तू वेश्या बनने योग्य भी नही। विलासी को द्रव्य के मूल्य में तू क्या देगी ? तू लुट चुकी है, किसी ने तेरा रस चूसकर फल्गु-मात्र छोड दिया है। तेरी आकर्षक शोभा नष्ट चुकी है, केवल दुर्भाग्य शेष रह गया है। चली जाकर जीवन के अयोग्य होकर जीवित रहनेका मोह छोड दे। असमर्थ को जीने का अधिकार नही है, जा, यमुना की शीतल धारमें विश्राम ले। "[27] असमर्थ नारी को जीवन जीने का अधिकार नही, उसे डुब मरना ही चाहिए। यह सनातन विचारधारा मनको कचोटती है।

दिव्या को अभिधर्म द्वारा ठुकरानेपर इस दशातक पहुँचती है। इस सम्बन्ध प्रकाशचंद्र गुप्त का मत है कि - "दिव्या शोषित भारतीय नारीका प्रतीक है। सामंती व्यवस्था में और वास्तवमें सभी वर्ण व्यवस्थामें नारी की कोई स्वतंत्र सत्ता नही। अभिधर्म भी नारी को शरण देने में असमर्थ है। "[28]

प्रसिध्द समीक्षक चंद्रकांत बांदिवडेकर का विचार है कि - " नारी मुक्ति की समस्या को सुलझाते हुए उसकी परवशता का इतिहास देखने का प्रयत्न यशपालने किया होगा और नारी को गुलाम या भोग्या बनानेवाले वर्णाश्रमाधिष्ठित हिन्दू समाज और निर्वाण की कल्पना में समाज को जकडने वाले बौध्द धर्म की, और उनकी दृष्टि गई होगी। "[29]

इस प्रकार " दिव्या " का वेश्या बनने मे धर्म की मान्यता ही कारण रहा है। ऐसा कहे तो अनुचित नही होगा।

अन्तर्जातीय विवाह की समस्या :

भारतमें जाति-व्यवस्था के बन्धन प्राचीन हैं। आधुनिक युगमें शिक्षा के कारण जाति व्यवस्थामें परिवर्तन आये है और आ रहे है। आज बाजारमें कारखानोंमे, दुकानोंमें सब जातियोंके लोग जाति-व्यवस्था के प्राचीन नियमोंको तोडते हुए एक साथ काम करते, खाते-पीते नजर आते हैं।

वैसा देखा जाय तो विवाह के सम्बन्ध में भी नियम है। कोई व्यक्ति अपनी जाति के बाहर विवाह नही कर सकता। लेकिन आज जातिके बाहर भी विवाह होने लगे है। यह प्रगतिशील समाज का द्योतन है।

यशपालजीने " दिव्या " में आन्तर्जातिय समस्या को पाठ-कोंके सामने रखा हैं। कि दिव्या [ब्राम्हण] विवाह पृथुसेन [दास] से न होनेपर दिव्या को अनेक समस्याओंका सामना

करना पडा है। इसके पिछे जाति - प्रथा को समाप्त करना, और अन्तर्जातिय विवाह को प्रोत्साहन देना, यशपाल का उद्देश रहा है। लेकिन अन्तर्जातिय विवाहोंकी असफलता का उदाहरण दिव्या है।

परंतु आज भी समाजमें " दिव्या " की तरह अन्य जातिके व्यक्ति से प्रेम करने, और गर्भवती होनेसे विवाह न करनेकी स्थिति मौजूद है। इस कटु यथार्थ को आज के परिवेश में मानव भुगतने के लिए विवश है। इसी विवशता तथा करूना का प्रतीक है, यशपाल की " दिव्या "।

यौन समस्या : विवाह की अनिवार्यता :

यशपाल जी के"दिव्या" उपन्यास में प्रस्तुत समस्या को देखा जा सकता है। उपन्यासमें वर्णाश्रम के द्वंद्व से तथा श्रेष्टी प्रेस्थ की कुटनीतिसे पृथुसेन ने सिरो से विवाह किया और सन्मान तथा संघ का अधिकारी बन गया। परंतु सीरो गणपति की पौत्री, गण परिषद संवाहक की पुत्रवधु और महापराक्रमी सेनापति पृथुसेन की अर्धांगिनी है। पृथुसेन सीरो को दण्डित करना चाहता है। यशपाल का विचार है कि नारी के नारीत्व का अपहरण करनेवाला विवाह अनिवार्य नही है। जो नारीको सामाजिक मान्यताओं एवं रुढियोंमे जकड लेता है। इसलिए सीरो कहती है - " मै तुम्हारी क्रीत दासी नही हूँ। तुम मेरे आश्रित हो, मै तुम्हारी आश्रित नही हूँ। मै तुम्हारी पिंजरेमे बध्द सारिका नही हूँ...... यदि तुम मेरा अपमान करोगे, तो मेरे लिए विस्तृत जनसमाज है। "[30]

उपर्युक्त शब्दोंसे मीरो का स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोन स्पष्ट होता है। और मीरो पृथुसेन के भोगवादी दृष्टिकोन का विरोध करती है।

डॉ. सुनील कुमार लवटे जी के प्रेम, यौन और विवाह के प्रति विचार दृष्टव्य है कि - " लेखक ने इन विषयोंके प्रति क्रांतिकारी रूप अपनाया है। इन सम्बन्धों के प्रति लेखक समाज की नैतिक धारणाओंको बर्दाश्त नही करता। उसका कहना है कि प्रेम प्राकृतिक आकर्षण है, कामाचार उसकी सहज भावना है। विषय उसकी पूर्ति का साधन है। व्यक्तिगत इच्छा तथा आकर्षण को कोई भी सामाजिक बन्धन रोक नही पाता है। "[31] शरत पूर्णिमा के अवसरपर आयोजित रामनृत्य का खंण्डन करते हुए डॉ. भुवनसिंहने कहाँ है कि, - " यौन-स्वच्छन्दता" का प्रमाण इतिहासमें भले ही मिल जाय, किंन्तु पति के सामने पत्नी और भाई के सामने बहण का हाथ पकड़ने वालेकी गर्दन पर रक्तरंजित खड्ग होता। "[32]

<u>वर्णव्यवस्था की समस्या</u> :

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंके अनुसार वर्ण व्यवस्था - ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र आदिचार वर्णोंमें विभाजित है। यही वर्णव्यवस्था किसी न किसी रूपमें सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही है।

वर्णव्यवस्था से ही यशपालकी दिव्या कुलीन वंश से सम्बन्धित होनेपर भी स्वतंत्र नही होती। वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरोंपर समाजव्दारा शोषित है। पृथुसेन से प्रेम करती है,

परंतु विवाह नही कर सकती, क्योंकी पृथुसेन एक दासपुत्र है। वर्ण व्यवस्थाके नियमानुसार एक ब्राम्हण पुत्री दिव्या दासपुत्र पृथुसेन से विवाह नही कर सकती। परिस्थितिवश गर्भवती हो जाती है। कोख में पृथुसेन को संतान है, समाजव्दारा इस कलंक से बचने के लिए घर छोडनेपर विवश हो जाती है। डॉ. योगेश कुमारी जी की टिप्पणी है कि, - " अगर वर्ण व्यवस्थापर विचार न करके उसे दासपुत्र से विवाह करनेकी अनुमति दे दी जाती तो दिव्या को नाना प्रकारकी यंत्रनाओंका सामना न करना पडता। " [33]

इस प्रकार दिव्या व्दारा यह स्पष्ट होता है कि वर्णव्यवस्था नारी के व्यक्तित्व के विकास मे बाधक सिध होती है। उसी तरह चंद्रकांत बांदिवडेकर के मतानुसार - " दिव्या की समस्या जिस प्रकार नारी की समस्या है, उसी तरह दिव्या का संघर्ष व्यक्ति से अधिक वर्ण और धर्म से है। " [34]

भारतीय समाज मे वर्णव्यवस्था के कठोरे बंधनों पर यशपालजीने कड़ा प्रहार किया है।

## यौन पवित्रता की समस्या :

भारतीय नारीके लिए यौन पवित्रता का नैतिक बंधन है। लेकिन यशपालने इस रूढ मान्यता को अस्वीकार किया है। उनकी मान्यता कम्युनिझम से प्रभावित है। वह काम को जीवन में आवश्यक मानते है, नैतिक मूल्योंमें परिवर्तकी आवश्यकता पर जोर

देकर यौन सम्बन्धी समस्याओंका समाधान करते है। "दिव्या" में दिव्या सर्वप्रथम पृथुसेन की प्रणयिणी है। उसके समक्ष स्वेच्छापूर्ण आत्म-समर्पण करती है। फिर माँ भी बनती है इतना होते हुए भी बाद में मारिश को अपनाती है।

यशपाल काम तृप्ति को मानव के स्वस्थ जीवन के संदर्भमे देखते हुए विचार व्यक्त करते है - " स्त्री की पवित्रता मनसे होनी चाहिए, शरीर से नही। "

यशपाल के मतसे काम भाव प्राकृतिक है उसकी पूर्ति भी भूख-प्यास की तरह वाँछनीय है। " दिव्या " में श्रेष्ठी का कथन है कि " स्त्री जीवन की पूर्ति नही, जीवन की पूर्तिका एक उपकरण और साधन मात्र है। "[35] श्रेष्ठी का कहना है कि सामर्थ्यवान पुरुष अनेक स्त्रियोंको प्राप्त कर सकता है। " इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री पुरुष संतुष्टि प्राप्त करनेका एक साधन माना है , साध्य नहीं, उसे भोग्या ही बना रहना चाहिए। इसीलिए सीरो से विवाह करने के लिए बाध्य करते है। सीरो से विवाह के पश्चात पृथुसेन दिव्या को पाने के लिए छट-पटाता है। सीरो के विचार से आर्योंमें स्त्री भोग संपत्ति और दासी ही है। दिव्या भी यही अनुभव करती है । दिव्याको पिताका गृह त्यागने पर अनेक यातनाएं सहनी पडी ती वह अपने आपसे कह उठती है - " नारी है क्या ? ..... कठोर धीर रूद्रधीर, कोमल पृथुसेन,अभद्र मारिश और मातल वृकनारी के लिए सब समान है। जो भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है उसके लिए अन्यत्र शरण कहाँ ? उसे सब भोगेंगे ही। "[36]

यशपाल मारिश के माध्यमसे स्पष्ट करते है कि -

नारी का भोग्या रूप समाजने ही बनाया है प्रकृति ने नही।
" नारी प्रकृति के विधान से नही, समाज के विधान से भोग्या है। प्रकृति में और समाजमें भी स्त्री और पुरूष अन्योनाश्रय है। पुरूषका आश्रय पानेसेही नारी परवश है परंन्तु भद्रे, नारी के जीवनकी सार्थकता के लिए पुरूष का आश्रय, आवश्यक है और नारी पुरूष का भी है।"[37]
प्रस्तुत मॅारिश और दिव्या के बीच का संवाद इस बात की पुष्टी करता है।

यशपाल नारी के भोग्या रूप का विरोध करते है सामंतवादी समाज ही उसके लिए कारण है। अन्त में दिव्या नश्वर जीवनमें संतोष प्राप्ति के लिए मॅारिश के विचारोंका स्वागत करती है।

यशपाल जीवन का लक्ष्य भोग मानते है। रत्नप्रभा की भोगसंबंधि परलोकवादी दृष्टिपर व्यंग्य करते हुए मारिश कहते हैं - " परलोक में अधिक भोग का अवसर पानेकी कामना से किया गया यह त्याग, त्याग नही। तुम्हारी आशा और विश्वास के अनुसार यह त्याग भोग की आशा का मूल्य है। भोग की इच्छा है तो साधन रहते भोग करो। "[38]यशपाल जीवनमें भोग को न दबाकर इस जीवनमें त्याग करके अगले जीवनमें भोग की इच्छा रखना व्यर्थ समझते हैं।

जीवन में सेक्स का महत्वपूर्ण स्थान " दिव्या " में दिखाने का प्रयास किया है। सेक्स के कारण ही स्त्री पुरूष एक दूसरे

के प्रति आकर्षित होते है और फिर प्रेम में बंध जाते है। जाति और धर्म का भी सेक्स के सामने कोई महत्व नही रहता। "दिव्या" का पृथुसेन के प्रति समर्पण इस-का स्पष्ट उदाहरण है।

हिन्दी के प्राय: सभी आलोचकोने " दिव्या " की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। यशपाल के सबसे कटू आलोचक डॅा. रामविलास शर्मा ने - " यशपालके इस उपन्यासको सबसे प्रभावशाली स्वीकार किया है। " [39]

प्रकाशचन्द्र गुप्त ने " दिव्या " के सम्बन्ध में कहा है - " दिव्या ऐतिहासिक उपन्यासोंमे एक अद्वितीय प्रयास है। उसमें यशपाल की कला प्रौढ़तम हुई है। इस कथा को यशपालने अपनी अनुपम कला से संवारा है। इतिहासकी यह अन्तदृष्टी और कला के प्रति अनन्य आकर्षण और अनुराग यशपाल की रचना-ओंको सबल और सार्थक बनाते है। "[40]

शिवनारायण श्रीवास्तवने भी स्वीकार किया है की, - "दिव्या उपन्यास" एक विशेष दृष्टिकोण से लिखा जाकर भी यह उपन्यास बडा ही सुन्दर बन पडा है। कहानी मे कृत्रिमता नही आने पायी है। प्रवाह सहज है, संवाद पात्रानुकूल है , वातावरण, वेश विन्यास, रीति-नीति सभी के अंकन में सतर्कता है। आरम्भ और अन्त दोनों मे ही -हृदय पर प्रभाव डालनेकी शक्ति है। "[41]

## निष्कर्ष

यशपालने " दिव्या " उपन्यासमें तत्कालीन दास प्रथा

शोषण, वर्ग एवं वर्ण संघर्ष जैसी समस्याओंका चित्रण करना ही उद्देश्य रहा है। इसके साथ ही साथ यशपाल इतिहास के उस अंशको भी लक्ष्य मानते हैं जो यथार्थ होकर भी युग-मर्यादाके नामपर छिपाया गया है। यशपालने उपन्यासमें मनुष्य भोक्ता नही कर्ता है, संम्पूर्ण माया मनुष्यकी ही क्रीडा है, यही प्रतिपादित किया है। दूसरा यह भी प्रतिपाद्य है कि समाज और व्यक्तियोंकी नैतिकता भौतिक और आर्थिक परिस्थितीका परिणाम होती है।

मानव जीवन का विश्लेषण करना ही उपन्यास का उद्देश्य रहा है। मानव जीवनका विश्लेषण -

१] जीवन क्या है ?

२] धर्मका वास्तविक अर्थ क्या है ?

३] नारी पुरूष का सम्बन्ध किस प्रकारका है।

इन तीन प्रश्नोंके माध्यमसे किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है की, नारी परतंत्रता प्रारंभ कालमें नारी की सामाजिक और पारिवारिक मर्यादाको घटाने के लिए नारीपर बंधन डालकर उसे परतंत्र बनाने के का प्रयास किया गया नारी बंधन काल मे नारी को पूर्ण रूपसे बंधनो मे जकड़ कर उसे गुलाम बना दिया है। नारी पीडा कालमें नारी को खिलौना बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार नचाया गया। नारी स्वतंत्रता कालमें नारी ने अपने अस्तित्व के प्रति सजगहोकर अपने अधिकारोंको पानेके लिए अपने बंधनों को तोडनेकी कोशिश की।

मगर हर कालमें नारीपर अत्याचार किये गये। और उसके अस्तित्व को मिटाने की कोशिश की गई। प्रत्येक कालमें नारी के सौंदर्य को देखकर उसका उपभोग किया गया।

वर्तमान युगमें नारी हर बंधन और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठा रही है। शिक्षित होकर सभी क्षेत्रोंमे वह अग्रेसर हो रही है। उसकी सुरक्षा और सुविधा के लिए कानून द्दारा मद्द मिल रही है। अपनी बुध्दीमानी, जिम्मेदारी, त्याग और कर्तव्य से नारीने पुरूष के समान अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को खडा किया है। मगर फिर भी नारी धार्मिक और सामाजिक बंधनोसे मुक्त नही है। आज भी उसके अस्तित्व को लालची और विषय लोलुप समाजसे खतरा है। अत: आज भी उसे किसी - न किसी रूपमें पुरूष के सहारे ही रहना पड़ रहा है।

# संदर्भ - सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| १] | यशपाल - दिव्या | पृष्ठ - | ६ |
| २] | त्रिभुवनसिंह-हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद | पृ. | १६७ |
| ३] | डॉ. शशिभूषण सिंहल-हिंदी उपन्यास नये क्षितिज | पृ. | १८२ |
| ४] | वही " | पृ. | १८३ |
| ५] | यशपाल - दिव्या | पृ. | १६ |
| ६] | यशपाल - दिव्या | पृ. | ५६ |
| ७] | वही | पृ. | १४५ |
| ८] | डॉ. शशिभूषण सिंहल-हिंदी उपन्यास नये क्षितिज | पृ. | १८४ |
| ९] | यशपाल - दिव्या | पृ. | १५१ |
| १०] | वही " | पृ. | २१८ |
| ११] | डॉ. शशिभूषण सिंहल-हिंदी उपन्यास नये क्षितिज | पृ. | १८६ |
| १२] | वही " | पृ. | १८६ |
| १३] | वही " | पृ. | १८ |
| १४] | वही " | पृ. | १४० |
| १५] | वही " | पृ. | १४२ |
| १६] | वही " | पृ. | १८ |
| १७] | वही " | पृ. | ५४ |
| १८] | वही " | पृ. | १२२ |
| १९] | वही " | पृ. | १२३ |
| २०] | वही " | पृ. | १२० |
| २१] | वही " | पृ. | ११९ |
| २२] | वही " | पृ. | १२७ |
| २३] | वही " | पृ. | १२८ |

२४] डॅा. शशिभूषण सिंहल-हिंदी उपन्यास नये क्षितिज पृ. १२८

२५] वही " पृ. १२९

२६] भदंत आनंद कौसल्यायन-अभिनंदन ग्रंथ
व्यक्तिगत स्मरण पृ. २
[सुदर्शन मल्होत्रा-यशपालके उपन्यासोंका मूल्यंकन
पृ. १२० पर उध्दृत]

२७] यशपाल - दिव्या पृ. १२९

२८] प्रकाशचंद्र गुप्त - आधुनिक हिंदी साहित्य, एकदृष्टि पृ. १५३, ५४

२९] चंद्रकांत बांदिवडेकर-उपन्यास स्थिति और गति पृ. ३४४

३०] यशपाल - दिव्या पृ. १७७

३१] डॅा. त्रिभुवनसिंह-हिंदी उपन्यासमें यथार्थवाद पृ. १७४

३२] डॅा. सुनिलकुमार लवटे-यशपाल एक समग्र मूल्यांकन पृ. ६७

३३] डॅा. योगेश कुमारी-यशपालके उपन्यासोंमे
नारी जीवन की समस्याएँ पृ. १०२

३४] चंद्रकांत बांदिवडेकर-उपन्यास स्थिती और गति पृ. ३४७

३५] यशपाल -दिव्या पृ. ८७

३६] वही " पृ. १०२, १०३

३७] वही " पृ. १५९

३८] वही " पृ. २४०

३९] डॅा. रामविलास शर्मा-प्रगतिशील साहित्यकी
समस्याएँ पृ. ११८

४०] प्रकाशचंद्र गुप्त - आधुनिक हिन्दी साहित्य-
एक दृष्टि पृ. १५७, ५८

४१] शिवनारायण श्रीवास्तव- हिंन्दी उपन्यास पृ. २३४


=०=०=०=०=०=०=

## उपसंहार

यशपाल के कृतित्व को उसके व्यक्तिगत जीवन एवं अनुभवोंसे पृथक करके देखा नहीं जा सकता। क्यों कि उसके विचार एवं भावनाएं उसके जीवन की ही प्रतिच्छाया होती है। वह युग की परिस्थितियों एवं समाजगत भावनाओंसे विमुख होकर साहित्य सृजन में संभव नहीं हो सकता। उसने किन भावनाओं, परिस्थितियों और विचारोंसे प्रेरित होकर साहित्य का निर्माण किया है। यह जानने के लिए उसके वास्तविक जीवन के यथार्थ परिचय के लिए यशपाल कीजीवनी एवं व्यक्तित्वपर प्रकाश डाला गया है। उनके व्यक्तित्व को जानने के लिए जीवन के विभिन्न पक्षोंपर विचार किया है।

यशपालजी अपनी युवावस्थामें हाथों पिस्तोल लेकर घूमता यह आतंकवादी और क्रांतिकारी रिहाई के पश्चात पिस्तोल फेंककर, कलम हाथ में लेता है, और सामाजिक क्रांति का काम साहित्य निर्माण में करता है। वे क्रांति और कलम के सिपाही थे। इन दो रूपोंसे सभी के वंदनीय रहे है।

मार्क्सवाद का प्रचार, गांधीवाद का विरोध ये यशपाल के जीवन के प्रमुख अंग रहे। एक क्रांतिकारी के रूपमें भी सफल रहे, वैसे ही उन्होंने साहित्यकार के रूपमें नाम कमाया। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओंपर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। सामाजिक प्रतिबध्दता ही यशपालजी के साहित्य का मूल माना जाता है।

उपन्यास मनुष्य की बाहरी और भितरी प्रवृत्तियोंको स्पष्ट कर जीवन को प्रेरणा देता है। वह दिशा निश्चित करता है, जो कि भूत का स्पष्टिकरण और वर्तमान का विश्लेषण करके भविष्य के निर्माण का संकेत देता है। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें इतिहास की अपेक्षा कल्पना

का अधिक्य रहता है। पर कल्पना का आधार भी ऐतिहासिक सत्य ही होता है। जिस तरह एकही ऐतिहासिक विषयपर विभिन्न इतिहासकार भिन्न-भिन्न प्रकारसे लिखते है, उसी तरह ऐतिहासिक उपन्यासकारभी एक ही विषयको विभिन्न दृष्टिकोन से प्रस्तुत करते है। हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परम्परा किशोरीलाल गोस्वामी के "स्वर्गिय कुसुम-कुमारी" उपन्याससे प्रारंभ होती है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का आरंभ प्रेमचंद - पूर्व - कालमें हुआ। उसका विकास प्रेमचंद काल में होने लगा और प्रेमचंदोत्तर काल में वह चरम सीमातक पहुंच गया।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्यपर नजर डालतेही एक बात स्पष्ट रुपसे उभरती है कि उसमें विषय का वैविध्य। भारतीय प्राचीन इतिहाससे लेकर विभिन्न कालखंडो की मानसिकता आँकने का प्रयास किया गया है। इतिहास के मूल तथ्यों को लेकर काल्पनिकता के सहारे आज के यथार्थ को प्रस्फुटित करना ही उनका उद्देश रहा है।

उपन्यास में पुण्मिन्न, पतंजलि और मिलिंद यह तीन ऐतिहासिक नाम ऐतिहासिक तथ्यों के केंद्र बिंदू रहे हैं। इससे इतिहासपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यथार्थ रुपसे यशपालने दूसरी शताब्दी के वातावरण के आधारपर "दिव्या" का कथानक नया चुना है।

यशपालने "दिव्या" के प्राककथनमें स्वीकार किया है। कि "अपने अतीत का मनन और मंथन हम भविष्य का संकेत पाने के प्रयोजन से करते हैं।" इसलिए "दिव्या" ऐतिहासिक उपन्यास न बनकर यथार्थत: ऐतिहासिक कल्पना प्रधान उपन्यास है। इसमें ऐतिहासिक वातावरण पर आधारित व्यक्ति और समाजकी गति और प्रवृत्ति का चित्र तथा यथार्थ का जीवन अंकित किया है।

उपन्यास की कथावस्तु विस्तृत पटल पर फैली होते हुए भी उसमें कथा संघटन का आयोजन उचित किया है। यह ऐतिहासिक उपन्यास होनेके कारण उपन्यासनुकुल तथा भावानुकुल भाषा का प्रयोग किया है। प्राचीन इतिहास के कई तत्थ्योंको लेकर काल्पनिकता का पुट देकर कथावस्तु को सुगठित बनाया है। कथावस्तु तेहृ भागों में विभाजित होते हुए भी सहज प्रवाहमयता होनेसे बिखरी हुयी नहीं लगती। ऐतिहासिक उपन्यास के अनुरूप भाषा पात्रानुकुल, भावानुकुल तथा देश - काल - वातावरणाकुल बन पडी है । विषय तथा कथावस्तुकी दृष्टिसे उपन्यास सफल माना जाता है।

यशपाल मार्क्सवादी उपन्यास लेखक है। इसी कारण उन्होने अपने उपन्यास में विविध वर्ण एवं वर्गगत संघर्षों का मार्मिक चित्रण किया है। यशपाल ने प्रगति के मार्ग में आनेवाली रुढियों और अंधविश्वासों का खंडन करना चाहा। शोषण के हर रूप का हर स्तरपर विरोध किया। साहित्य को मनुष्य की भौतिक तथा मानसिक प्रगति का वाहक माना। यशपाल के उपन्यास का मूल स्तर यही है ।

उन्होने अपने उपन्यासमें सम सामयिक जीवन और समस्याओंका यथार्थपरक वर्णन किया है। पूँजीवादी समाजमें नारी की कोई स्वतंत्र सत्ता नही है, यही यशपाल की मान्यता थी। नारी ऐसे समाज में मात्र भोग-विलास की सामग्री मानी जाती है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो देती है। वह केवल पति को प्रसन्न करना और बच्चों की देखभाल करना अपना परम कर्तव्य समझती है। नारी की यही असह्य स्थिति को देखकर यशपाल का दावा था कि नारी की वैयक्तिकता का उध्दार होना चाहिए और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने उपन्यास में नारी समस्याओंको विस्तार के साथ चित्रित किया है।

यशपालने समाज की नारी समस्याको विविध रूपोंमें देखने का प्रयास किया है। चिरकाल से अन्तर्जगत और बाह्य जगत के संघर्षोसे पीडित,

उच्च वर्ग तथा मध्यवर्ग के आमोद-प्रमोद के साधन रूप [वेश्या रूप] में नारी की स्थिति का दिग्दर्शन कराकर समाज की इस कुरूपतापर "मल्लिका", "रत्नप्रभा" और "दिव्या" आदि पात्रोंमें गहरा प्रहार किया है। इसमे उपदेश नही है, एक यथार्थ चित्रकी अत्यंत प्रभावशाली झलक दिखाकर छोड दिया गया है। जिसे देखकर पाठक भौचक्का रह जाता है, कि अरे यह तो हमारे ही समाज का रूप है जिसे हम प्रतिदिन देखकर भी नहीं देखते थे।

यशपालके उपन्यास में वर्ण एवं वर्गसंघर्ष के साथ नारी समस्या को प्रधानता मिली है। कहने को तो वह गृहस्वामिनी है, पर बंधनों में जकडी हुयी, रुढियों से ग्रस्त, बच्चा पैदा करने की मशीन मात्र है। धर्म तथा वर्ण एवं वर्गसंघर्ष के बीच "दिव्या" की स्थिति का चित्रण किया है। उसे अनेक परिस्थितियोंका सामना मजबूरी से करना पडता है। इससे स्पष्ट होता है नारी पिंजरे में पैदा होनेवाली चिड़िया है, उसे कभी खयाल नहीं आता कि वह खुले आसमान में उड़ भी सकती है, वृक्षों से ताजे फल चुग सकती है। उसे कभी ऐसी इच्छा भी नहीं होती, इसलिए उपन्यास के अंतमें "दिव्या" मारिश के आश्रम को स्वीकार करती है। परंतु एक बार यह जान लेनेपर कि खुले आसमान में पर फैलाकर उड़ सकना चाहिए और वह उड़ सकती, तो सोने का पिंजरा और घी की पूरी उसके लिए मिठ्ठी हो जाती है।

नारी की विभिन्न मनस्थितियों और द्वंद्वोंका यशपाल को पर्याप्त ज्ञान है। इसलिए नारी के मनोविश्लेषण और अंतर्द्वंद्वोंका चारित्रिक सूक्ष्मताओंका सुंदर रूप प्रस्तुत करता है।

यशपालने उपन्यास में रूद्रधीर, पृथुसेन और मारिश के माध्यम से विभिन्न विचार धाराओंको प्रस्तुत किया है। जिसमें धार्मिक रूढी, परंपरा और अन्धविश्वास आदि में "दिव्या" फंस गयी जो निम्न स्तर

से उपर उठ नही सकती। इसके मूल में धर्म ही है । पृथुसेन, रुद्रधीर और मारिश के विचारोंको सुनकर अंतमें सृष्टि के रूप में "दिव्या" मारिश के आश्रय को चाहती है।

यशपाल के उपन्यासका मुख्य उद्देश्य राजनितिक, आर्थिक, सामाजिक शोषण से मनुष्य की मुक्ति रहा है। जिसे ऐतिहासिक और आधुनिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यास में स्पष्ट किया है। इसके लिए अपने उपन्यास साहित्य की रचना करते है । उनका विश्वास है कि आज पाठक के विचारों को बदलनेकी आवश्यकता है, ताकि नयी परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक धारणाएं तथा वैयक्तिक मान्यताएं बदल सके। पुरानी मान्यताएं रुढ हो चुकी है, धारणाएं जड़ पड चुकी है, और ये जीवन तथा समाज के विकास को अवरूद्द कर रही है। आज शोषित को उठाना है, नारी को उसकी दासता से मुक्त करना है। इसलिए उनका उपन्यास उन सब रुढ़ियों, जड़ मान्यताओं तथा यांत्रिक मानव सबन्धोको चुनौती देने के उद्देश्य से लिखा है । यशपाल आर्थिक, सामाजिक विषमता पर बार बार प्रहार करने के लिए उपन्यास की रचना करते है।

पठित उपन्यास द्वारा स्पष्ट होता है कि मानव सभ्यता के प्रारंभकाल के प्रांगण की कुसुमसी खिलने और सुगंध फैलानेमें स्वतंत्र नारीको पुरूष एवं समाज व्यवस्थाने कैसे धीरे-धीरे कसकर रखा और उसे एक वस्तु, विलासयंत्र बनाया। नारी की स्वतंत्रता, पीड़ा एवं स्वतंत्र बननेकी छटपटाहट के विभिन्न चित्र इस उपन्यास में प्राप्त होते है।

नारी के संबंध में विभिन्न तत्थ्योंको उजागर करते समय लेखकोंने काल विशेष की वास्तविकता एवं व्यवस्था के परिप्रेक्ष्यमें उसे प्रस्तुत किया है तथा यह करते समय वर्तमान से अपनी आँखे ओझल नहीं होने दी। आज की नारी की पीड़ा की ऐतिहासिक मीमांसा इनमें प्राप्त होती है।

उपलब्धियाँ -

इस उपन्यास के अध्ययन द्वारा निम्नलिखित उपलब्धियाँ विशेष लक्षीत होती हैं ।

१. शोध-प्रबंध में नारी जीवन की हर समस्या का समग्र अध्ययन किया है।

२. सामाजिक जीवन के परिवर्तनोंको दिखाकर बदलते उभरते सम्बन्धोंका अंकन करनेका प्रयास किया गया है।

३. इस उपन्यासमें नारी के परिवर्तनीय रूपको विशेष महत्व दिया गया है।

४. ऐतिहासिक उपन्यासमें नारी समस्याओंका विस्तृत विश्लेषण कर अन्य समस्याओंका चित्रण किया गया है।

५. समस्याओंका परिवर्तन आदिका क्रमागत लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है।

६. वर्तमान जीवनमें प्राप्त होनेवाली नारी समस्याओंको ऐतिहासिक उपन्यासमें खोजने की कोशिश की है।

७. ऐतिहासिक उपन्यासमें चित्रित नारी समस्याओंका अध्ययन करते हुए लेखकोंपर होनेवाले वर्तमान काल के प्रभाव को भी परखने की कोशिश की है।

## परिशिष्ट - १

## यशपाल का रचना संसार

अ] कहानी संग्रह -

| | | |
|---|---|---|
| १. | पिंजरे की उड़ान | १९३९ सन |
| २. | वो दुनिया | १९४१ सन |
| ३. | तर्क का तूफान | १९४३ सन |
| ४. | ज्ञानदान | १९४४ सन |
| ५. | अभिशाप्त | १९४४ सन |
| ६. | भस्मावृत चिन्गारी | १९४६ सन |
| ७. | फूलों का कर्ता | १९४९ सन |
| ८. | धर्मयुध्द | १९५० सन |
| ९. | उत्तराधिकारी | १९५१ सन |
| १०. | चित्रका शिर्षक | १९५२ सन |
| ११. | तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं ? | १९५४ सन |
| १२. | उत्तमी की माँ | १९५५ सन |
| १३. | ओ भैरवी | १९५८ सन |
| १४. | सच बोलने की भूल | १९६२ सन |
| १५. | खच्चर और आदमी | १९६५ सन |
| १६. | भूख के तीन दिन | १९६८ सन |
| १७. | लैंपशेड | १९७६ सन |
| | [लेखक की मृत्यू के बाद प्रकाशित] | |
| १८. | मेरी प्रिय कहानियाँ | १९७६ सन |

ब] उपन्यास -

| | | |
|---|---|---|
| १. | दादा कामरेड | १९४१ |
| २. | देशद्रोही | १९४३ |
| ३. | दिव्या | १९४५ |
| ४. | पार्टी कामरेड | १९४७ |
| ५. | मनुष्य के रूप | १९४९ |
| ६. | अमिता | १९५६ |
| ७. | झूठा सच-वतन और देश | १९५८ |
| | झूठा सच-देश और भविष्य | १९६० |
| ८. | बारह घंटे | १९६३ |
| ९. | अप्सरा का शाप | १९६५ |
| १०. | क्यों फंसे | १९६८ |
| ११. | मेरी तेरी उसकी बात | १९६८ |

क] अनुदित उपन्यास -

| | | |
|---|---|---|
| १२. | पक्का कदम | १९४९ |
| १३. | जुलेखा | |
| १४. | फसल | |

ड] यशपाल का कथेत्तर साहित्य -

नाटक

१. नशे - नशे की बात

**आत्मकथा -**

१. सिंहावलोकन [प्रथम भाग] १९५१

२. सिंहावलोकन [द्वितीय भाग] १९५२

३. सिंहावलोकन [तृतीय भाग] १९५५

**संस्मरण -**

४. लोहे की दीवार के दोनों ओर १९५२

५. राहबीती १९५३

६. स्वर्गोदयान बिना सांप

**निबंध साहित्य -**

७. न्याय का संघर्ष १९४०

८. मार्क्सवाद १९४१

९. गांधीवाद की शव-परीक्षा १९४२

१०. चक्कर क्लब १९४३

११. बात-बात में बात १९५०

१२. रामराज्य की कथा १९५०

१३. देखा, सोचा, समझा १९५१

१४. जग का मुजरा १९५२

१५. बीबीजी कहती है, मेरा चेहरा रौबीला है १९६१

१६. गांधी और लेनीन जब्त

**पत्र साहित्य -**

१७. यशपाल के पत्र [सं. मधुरेश]

## संदर्भ ग्रंथ सूची


| लेखक | ग्रंथ | प्रकाशन | संस्करण |
|---|---|---|---|
| **अ] आधारित ग्रंथ** | | | |
| १. यशपाल | दिव्या | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद - १ | सं. १२, १९७८ |
| **आ] संदर्भ ग्रंथ** | | | |
| १. कुसुम वार्ष्णेय | भगवती चरण वर्मा [चित्रलेखा से सीधी सच्ची बाते तक] | साहित्य भवन, प्रा. लि., इलाहाबाद | प्रथम सं. १९६८ |
| २. डॉ. गोविंदजी | हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग | अभिनव भारती प्रकाशन इलाहाबाद | १९७२ |
| ३. डॉ. चंद्रभानु सोनवणे | यशपाल की कहानियाँ, कथ्य और शिल्प | पंचशील प्रकाशन, जयपुर | प्रथम १९८१ |
| ४. डॉ. त्रिभुवन सिंह | हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद | हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी - १ | चतुर्थ २०२२ वि. |
| ५. प्रकाशचंद्र गुप्त | आधुनिक हिंदी साहित्य एक दृष्टी | आलोक प्रकाशन, बीकानेर. | १९५२ |
| ६. डॉ. प्रतापनारायण टंडन | हिंदी उपन्यास कला | हिंदी समिती सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ | प्र. १९६५ |

| लेखक | ग्रंथ | प्रकाशन | संस्करण |
|---|---|---|---|
| ७. प्रवीण नायक | यशपाल का औपन्यासिक शिल्प | सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा | प्र. १९६३ |
| ८. प्रकाशचंद्र मिश्र | यशपाल का कथा साहित्य | दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., नई दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास समस्त विश्व में सहयोग कंपनियाँ | प्र. १९७८ |
| ९. प्रेमचंद | साहित्य का उद्देश | हंस प्रकाशन, इलाहाबाद | वर्तमान १९६७ |
| १०. बी. एम. चिंतामणि | ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य | चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१ | १९५९ |
| ११. यशपाल | सिंहावलोकन [प्रथमभाग] | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद - १ | स. १९७२ |
| १२. योगेश सूरी | यशपाल के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्यांए | चंद्रलोक प्रकाशन, किदवईनगर, कानपुर. | प्र. १९९४ |
| १३. रत्नाकर पाण्डेय | यशपाल की दिव्या | उदय प्रकाशन वाराणसी - १ | प्र. १९६४ |
| १४. रामनारायण सिंह "मधुर" | हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यास | ग्रंथम प्र. रामबाग कानपुर-१२ | प्र. १९७१ |
| १५. रामविलास शर्मा | प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ | विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा | - |

| लेखक | ग्रंथ | प्रकाशन | संस्करण |
| --- | --- | --- | --- |
| १६. प्रो. वासुदेव | हिंदी कहानी कहानीकार | ज्ञान मंडल ली. वाराणसी - १ | सं. २ |
| १७. डॉ. शशिभूषण सिंहल | हिंदी उपन्यास नये क्षितिज | प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली | प्र. १९९२ |
| १८. शांतिस्वरूप गुप्त | हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी | एस. ई. अँड कंपनी फव्वारा, नई दिल्ली-६ | प्र. १९६६ |
| १९. शिवनारायण श्रीवास्तव | हिंदी उपन्यास | सरस्वती मंदिर जतनबर ; बनारस | सं. २००७ वि |
| २०. एस. एन. गणेशन | हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन और पाश्चात्य उपन्यास से उसकी तुलना | राजपाल एण्ड संन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली. | १९६२ |
| २१. डॉ. सत्यपाल चुघ | हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास एवं विकासेतिहास | कोणार्क प्रकाशन कारलानगर, दिल्ली. | १९७८ |
| २२. स्नेहलता शर्मा | यशपाल के उपन्यास | कौशाम्बी प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद | स. १९६२ |
| २३. डॉ. सुदर्शन मल्होत्रा. | यशपाल के उपन्यासोंका मूल्यांकन | आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली - ३१ | प्र. १९७३ |
| २४. डॉ. सुषमा त्यागी | प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यास - इतिहास और कला | अनुराधा प्रकाशन मेरठ | १९८५ |
| २५. डॉ. सुनीलकुमार लवटे | यशपाल - एक समग्र मूल्यांकन | पराग प्रकाशन दिल्ली | प्र. १९८४ |

## प त्रि का


| | | |
|---|---|---|
| १. प्रकाशचंद्र गुप्त | दिव्या निबंध | हंस पत्रिका जनवरी १९४६ |
| २. भदंत आनंद कौसल्यायन | अभिनन्दन ग्रंथ | व्यक्तिगत स्मरण |
| ३. मधुरेश | यशपाल के पत्र | |
| ४. यशपाल | अभिनन्दन ग्रन्थ | |
| ५. धर्मयुग | १६ जनवरी १९७७ | |


## को श ग्रं थ


| लेखक | ग्रंथ | प्रकाशन | संस्करण |
|---|---|---|---|
| १. रामचंद्र वर्मा | संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर | नागरी प्रचारिणी सभा, काशी | षष्ठ सं. २०१४ वि. |
| २. प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा | मानक हिंदी कोश | प्रथम शासन विकास हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग | प्र. १८८७ |
| ३. वामन शिवराम आपटे | संस्कृत हिंदी कोश | श्री. सुंदरलाल मोतीलाल बनारसी जवाहरनगर, दिल्ली | १९६६ |
| ४. श्याम सुन्दरदास बी. ए. मूल संपादक | हिंदी शब्दसागर [प्र. ख. ] | काशी नागरी प्रचारिणी सभा | १९६७ |
| ५. श्री. आर्थर मील | ए स्टडी ऑफ इंग्लिश फिक्शन सेल्फ एडयूकेटर राजकमल, दिल्ली. | | १९६२ |